International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 219-222

बृहत्त्रयी के अनुसार समुद्र का उल्लेख

डॉ० निशा

पी-एच.डी. संस्कृत, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, समरहिल, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत।

परस्तवना

संस्कृत साहित्य अत्यन्त विशाल है। बृहत्त्रयी शब्द संस्कृत साहित्य में बहुत प्रसिद्ध रहा है। बृहत्त्रयी में भारवि का किरातार्जुनीय, माघ का शिशुपालवध तथा श्रीहर्ष का नैषधीयचरित ये तीन महाकाव्य माने जाते हैं। त्रयी का अर्थ है - तीन काव्य। इन तीनों काव्य के लिए बृहत् शब्द का प्रयोग उनक काव्य सम्पत्ति तथा कलेवर-सम्पत्ति दोनों को ही दृष्टि में रखकर किया गया है। बृहत्त्रयी में विभिन्न प्रकार के विषय वर्णित किए गए हैं। इन्हीं विषयों में प्रमुख विषय समुद्र का है। कहीं-कहीं चार समुद्र तथा कहीं सात समुद्र का सुन्दर वर्णन किया गया है।

समुद्र से अभिप्राय उस जल राशि से है जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए है और जो इस पृथ्वी तल के प्रायः तीन-चौथाई हिस्से में व्याप्त है।[1] किरातार्जुनीय के उल्लेखानुसार देवाङ्गनाओं को देखकर उनके हित की आकांक्षा से सूर्य, अस्त होने के लिये समुद्र की ओर झुक जाता है।[2] महाकवि भारवि आगे उल्लेख करते हैं कि सूर्य अस्ताचल के जङ्गलों में या समुद्र में चला गया है इस बात का पता ही नहीं चलता।[3] शिशुपालवधानुसार पश्चिमी समुद्र में सूर्यास्त हो जाता है।[4] महाकवि आगे उल्लेख करते हैं कि रात्रि में सूर्य समुद्र के भीतर डूब जाता है। समुद्र की वडवाग्नि से सन्तप्त होकर सुबह जब उदय होता है तो जलती हुई खैर की लकड़ी के अङ्गारे के समान लाल होता है।[5] महाकवि ने वराह भगवान् द्वारा समुद्र के महाप्रवाह से पृथ्वी को बाहर निकालने का उल्लेख किया है।[6] किरातार्जुनीय में दो स्थलों पर प्रलयकाल के झञ्झावात से प्रेरित समुद्र की लहरों का तीव्रता से चलने का उल्लेख किया गया है।[7] शिशुपालवध में समुद्र द्वारा तटप्रदेश को लाँघकर सर्वत्र जलमय करने का वर्णन प्राप्त होता है।[8] भारवि बतलाते हैं कि युगान्तकाल में पूर्वी और पश्चिमी सागरों का जल सूख गया था।[9] माघ के वर्णनानुसार युगान्तकाल में पानी से संसार को प्लावित करते रहने पर भी समुद्र खाली नहीं होता।[10] महाकवि ने समुद्र को नदियों का पति कहा है। गङ्गा का जल तो अत्यन्त स्वच्छ है जब यह समुद्र में गिरता है तो बड़ा शोभायमान प्रतीत होता है।[11] महाकवि माघ ने भी अनेक स्थलों पर समुद्र को नदियों का पति कहा है क्योंकि सब नदियाँ समुद्र में जाकर मिलती है।[12] एक अन्य स्थल पर माघ उल्लेख करते हैं कि पहाड़ी नदियाँ गङ्गादि महानदियों में मिलती है और ये महानदियाँ पहाड़ी नदियों को समुद्र में पहुँचाती है।[13] नैषधानुसार नदियाँ समुद्र में प्रविष्ट होती है[14] और समुद्र नदियों का पति है।[15] महाकवि ने दो स्थलों पर तो वड़वाग्नि की पीतवर्ण ज्वालाओं से संयुक्त होकर समुद्र के सुशोभित होने का वर्णन किया है[16] तो एक अन्य स्थल पर समुद्र में स्थित वडवाग्नि की ज्वाला से समुद्र के सन्तप्त होने का उल्लेख किया है।[17] नैषधचरित में भी यही उल्लेख किया गया है कि समुद्र के भीतर वडवाग्नि रहता है।[18] ऐसा कहा जाता है कि दानवों का एक अत्यन्त दारुणगण था जो कि 'कालेय' नाम से लोकों में विख्यात था। वे सब राक्षस महान् उर्मियों से युक्त रत्नों की खान उस वरुणदेव के आलय सागर को अपना एक किला समझकर उसी में रहते थे। जलों के निधि वारुण समुद्र को प्राप्त करके कालेय तीनों लोकों के विनाश करने में संलग्न हो गया था। वे लोग अत्यन्त अभिक्रुद्ध होकर रात्रि में उन मुनियों का भक्षण करते थे जो अपने आश्रमों में पुष्प आयतनों में निवास करते थें तब अगस्त्य ऋषि ने लोकों के हित के लिये इस वारुण के आलय सागर का पान किया।[19] महाकवि श्रीहर्ष ने तीन स्थलों पर अगस्त्य मुनि द्वारा दुर्निवार वडवाग्नि की परवाह किये बिना समुद्र की अगाध जलराशि को पीने का वर्णन किया गया है।[20] ऐसा कहा जाता है कि पूर्वकाल में देवताओं, दैत्यों और दानवों ने मन्दराचल को मथानी और वासुकि नाग को डोरी बनाकर अमृत के लिये जलनिधि समुद्र को मथना आरम्भ किया। उन महान् असुरों ने नागराज वासुकि के मुखभाग को दृढ़तापूर्वक पकड़ रखा था और जिस ओर उसकी पूँछ थी उधर सारे देवता उसे पकड़कर खड़े थे।[21] किरातार्जुनीय महाकाव्य में क्षीर समुद्रमन्थन का उल्लेख किया गया है[22] और मन्दराचल पर्वत की सहायता से देवता और असुरों द्वारा अमृत के लिये समुद्रमन्थन का उल्लेख किया गया है।[23] शिशुपालवध में भी समुद्र को मन्दराचल से मथने का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया गया है।[24] श्रीहर्ष उल्लेख करते हैं कि मन्दराचल में सर्पराज वासुकि को सैंकड़ों बार लपेटकर समुद्रमन्थन किया गया था। वासुकि के द्वारा घिसने से उस मन्दराचल में पड़े हुए जो चिह्न थे वे चट्टानों से बनाई हुई सीढ़ी के समान मालूम पड़ते थे।[25] एक मत के अनुसार समुद्रमन्थन के समय क्षीरसागर से चन्द्रमा उत्पन्न हुये जिनको शिवजी ने समुद्र से माँग लिया था और कहा था कि यह मेरी जटाओं को विभूषित करने वाला भूषण बन जाएगा।[26] श्रीहर्ष वर्णन करते हैं कि समुद्रमन्थन के समय समुद्र से ऐरावत, कल्पवृक्ष और चन्द्रमा निकले। चन्द्रमा और ऐरावत एक साथ समुद्र में निवास करने वाले हैं। समुद्रमन्थन के अवसर पर चन्द्रमा के बाद ऐरावत उत्पन्न हुआ इसलिए ऐरावत चन्द्रमा का छोटा भाई हुआ और ऐरावत इन्द्र का वाहनभूत होने से पूर्वदिशा में निवास करने के कारण अतिथिरूप में आये हुए अपने बड़े भाई चन्द्रमा के मस्तक में सिन्दूर-तिलक लगाकर आदर सत्कार करता है।[27] बाणभट्ट के अनुसार क्षीरसमुद्र अर्धचन्द्र वाला है क्योंकि समुद्रमन्थन में अर्धचन्द्र ही निकला था।[28] श्रीहर्ष वर्णन करते हैं कि समुद्र ने एक कलात्मक चन्द्रमा को ही उत्पन्न किया, पूर्ण चन्द्रमा को नहीं क्योंकि यदि समुद्र पूर्ण चन्द्रमा को उत्पन्न करता तो उस समय शिवजी एक कलात्मक चन्द्र को अपने मस्तक पर धारण नहीं कर पाते।[29] एक स्थल पर तो दमयन्ती कहती है कि यह चन्द्रमा समुद्रमन्थन के समय समुद्र में गिरते हुए मन्दराचल से भी चकनाचूर नहीं हुआ।[30] दो अन्य स्थलों पर दमयन्ती कहती है कि समुद्र ने जैसे कालूकूट विष को बाहर निकाला था वैसे ही चन्द्रमा को भी निकाला। शिवजी भगवान् को इस चन्द्रमा को खा लेना चाहिए था। समुद्र से उत्पन्न कालकूट विष को शिवजी ने पी लिया था इसलिए वह विष कभी उत्पन्न नहीं हुआ। लेकिन समुद्र से उत्पन्न इस चन्द्ररूप श्वेत विष का बहुत सारे देवताओं ने पान करके इसको खत्म कर दिया था फिर भी यह चन्द्रमा स्वयमेव उत्पन्न हो जाता है।[31]

माघ वर्णन करते हैं कि समुद्रमन्थन के समय समुद्र से उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा उत्पन्न हुआ था।[32] श्रीहर्ष बतलाते हैं कि समुद्रमन्थन के समय समुद्र से उच्चैःश्रवा नामक अश्वरत्न निकला, जिसे इन्द्र ने प्राप्त किया, किन्तु समुद्र ने उच्चैःश्रवा से भी श्रेष्ठ घोड़े को छिपाकर रखा तथा उच्चैःश्रवा नामक साधारण घोड़ा इन्द्र को देकर इन्द्र को ठग लिया और छिपाया हुआ घोड़ा समुद्र ने अपने स्वामी वरुण को दे दिया।[33] ऐसा कहा जाता है कि समुद्रमन्थन के समय हाथों में कमल लिये हुए स्फुटकान्ति वाली विकसित कमल पर विराजमान श्रीलक्ष्मी देवी क्षीरसमुद्र से निकली।[34] शिशुपालवधानुसार समुद्र लक्ष्मी से रहित तरङ्ग वाला है।[35] समुद्रमन्थन के समय समुद्र से हाथों में कमल लिए हुए लक्ष्मी निकली थी।[36] श्रीहर्ष के अनुसार देवताओं ने बहुत परिश्रम करके क्षीरसमुद्रमन्थन से लक्ष्मी को निकालकर इन्द्र के छोटे भाई

उपेन्द्र (विष्णु) के लिए दे दिया।[37] एक मत के अनुसार जिस समय देवता अभीष्ट अमृत का पान कर रहे थे, ठीक उसी समय राहु नामक देवता ने देवतारूप में आकर अमृत पीना आरम्भ किया। वह अमृत अभी उस दानव के कण्ठ तक ही पहुँचा था कि चन्द्रमा और सूर्य ने देवताओं के हित की इच्छा से उसका भेद विष्णु को बतला दिया। तब चक्रधारी श्री हरि ने अमृत पीने वाले उस राहु दानव का मुकुटमण्डित मस्तक चक्रद्वारा बलपूर्वक काट दिया।[38] वास्तव में समुद्रमन्थन के बाद अमृत बांटने के समय सूर्य और चन्द्र के बीच में बैठकर राहु ने जब अमृत पी लिया तब उसे असुर जानकर विष्णु ने उसका सिर सुदर्शन चक्र से काट लिया।[39]

ऐसा कहा जाता है कि पुष्कर द्वीप में अधिकतर चन्द्रमा के उदय और अस्त होने से न्यूनाधिक न होने पर भी सागर का जल घटता और बढ़ता है।[40] शिशुपालवधानुसार समुद्र चन्द्रकिरणों का अत्यधिक मात्रा में पान करता है जिससे समुद्र का जल बढ़ जाता है। तब समुद्र उन चन्द्रकिरणों को मोतियों के रूप में तट पर फेंक देता हैं।[41] समुद्र से रत्नों की प्राप्ति होने के कारण समुद्र ने रत्नाकरत्व प्राप्त कर लिया।[42] दो अन्य स्थलों पर समुद्र की सीपों में मोतियों के होने का उल्लेख किया गया है।[43] श्रीहर्ष उल्लेख करते हैं कि क्षीरसमुद्र बहुत से रत्नों से युक्त है।[44] महाकवि वर्णन करते हैं कि चन्द्रमा के उदय होने पर खुशी से समुद्र का जल बढ़ जाता है। समुद्र की पत्नी आकाशगङ्गा है। चन्द्रोदय होने पर चन्द्रकान्तमणियों के पसीजने से बहते हुए पानी से आकाशगङ्गा जलपूर्ण हो जाती है और अपने पति समुद्र के हर्ष से बढ़ने पर स्वयं भी हर्ष से बढ़कर पतिव्रत धर्म का पालन करती है।[45] चाँदनी समुद्र को चञ्चल करती है।[46]

एक मत के अनुसार जब सागर के अश्वमेध यज्ञ का अश्व समुद्रतट पर जा रहा था, तभी इन्द्र ने उसका अपहरण कर लिया और भूतल में समा गए। तब राजा सगर ने अपने पुत्रों से पृथ्वी को खुदवाना प्रारम्भ किया और खोदते-खोदते उनके पुत्रों ने भगवान् विष्णु को कपिल रूप में योगमग्न बैठे देखा। उन्हें देखते ही सब सगर-पुत्रों ने वहाँ जाकर उनकी योग-निद्रा भंग कर दी, तब नेत्र खोलते ही भगवान् कपिल के नेत्रों से अग्नि निकलने लगी, जिसमें सगर-पुत्र भस्म हो गए। परन्तु उनमें से चार पुत्र बहुकेतु, सुकेतु, धर्मरथ और पंचजन भस्म होने से बच गए।[47] तब भगीरथ ने अति उग्र तप किया था जिससे परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा जी ने भगीरथ को गङ्गाजी दे दी थी। उस समय भगीरथ ने अपने मन में विचार किया था कि इन गङ्गाजी को यहाँ से जाने पर कौन धारण करेगा। गङ्गा देवी के प्रपात करने के लिये फिर राजा भगीरथ ने परम दयालु भगवान् शङ्कर की आराधना की थी और उनके ही द्वारा स्वर्ग से गङ्गाजी को इस भूमण्डल में लाकर भगीरथ नृपति स्वयं पवित्र हुये और पितरों को भी जल का स्पर्श करवा कर स्वर्ग लोक में पहुँचा दिया था।[48] श्रीहर्ष बतलाते हैं कि सगर के सौवें अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को खोजते हुए सगर-पुत्रों ने समुद्र को खोदा। तब कपिलमुनि के शाप से वे सगरपुत्र भस्म हो गए। इसके बाद कठोर तपस्या करके भगीरथ ने ब्रह्मा और शिवजी को प्रसन्नकर रथ के पीछे-पीछे अनुगमन करने वाली गङ्गा के द्वारा समुद्र को भरा और त्रेतायुग में सीता का हरण होने पर लङ्का जाते समय श्री राम ने समुद्र को बाँधा।[49] महाकवि माघ ने दो स्थलों पर रामचन्द्र द्वारा समुद्र को लांघने तथा राक्षसवंश के नाश करने का उल्लेख किया है।[50]

किरातार्जुनीय महाकाव्य में चार सागरों का उल्लेख मात्र किया गया है।[51] शिशुपालवध में माघ ने श्रीकृष्ण भगवान् के उदर में चार समुद्रों के समाने का वर्णन किया है।[52] श्रीहर्ष ने सात समुद्रों का वर्णन किया है। श्रीहर्ष बतलाते हैं कि जब अगस्त्य मुनि सात समुद्रों में से एक समुद्र (लवण या क्षार समुद्र) का पान करने लगे तब छः में से पाँच समुद्रों (क्षीर, दधि, घृत, इक्षुरस, मधुरस) को भय लगने लगा लेकिन सुरासमुद्र नहीं डरा। वह इसलिए नहीं डरा क्योंकि ब्राह्मणों के लिए सुरापान निषेध है। इसलिए अगस्त्य ऋषि उसका पान नहीं कर पाएंगे।[53] भारवि ने क्षीरसागर का उल्लेख किया है।[54] माघ ने एक स्थल पर क्षारसागर[55] तो एक स्थल पर क्षीरसागर का भी उल्लेख किया है।[56] महाकवि श्रीहर्ष ने अनेक स्थलों पर क्षीरसागर का वर्णन किया है।[57] महाकवि अन्य समुद्रों का भी उल्लेख करते हैं। पुष्कर द्वीप मीठे जल वाले समुद्र से घिरा हुआ है।[58] क्रौञ्चद्वीप दधिमण्डमय सागर के प्रवाह से सुशोभित होता है।[59] कुशद्वीप में घृतसागर स्थित है।[60] शाल्मलि द्वीप मदिराख्य (सुरा) समुद्र से घिरा हुआ है।[61] प्लक्षद्वीप इक्षुरस समुद्र से वेष्टित है।[62] इसके अतिरिक्त बृहत्त्रयी में कुआँ, बावड़ी, झरनें इत्यादि का भी वर्णन किया गया है।

उपर्युक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि समुद्र अगाध जल तथा रत्नों का भण्डार है अतः इसे रत्नाकर भी कहा जाता है। समुद्र में वडवाग्नि रहती है तथा समुद्र को वरुणालय भी कहा जाता है। अधिकांशतः समुद्र को नदियों का पति भी बतलाया गया है। प्राचीनकाल में देवताओं तथा दैत्यों ने मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाकर तथा वासुकि नाग को डोरी बनाकर अमृत के लिए समुद्र का मन्थन किया था। तब समुद्र से चौदह रत्न निकले थे। समुद्रमन्थन के समय समुद्र से ऐरावत, चन्द्रमा, उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, लक्ष्मी तथा कालकूट नामक विष निकले थे। उस समय दूसरों के हित के लिए भगवान् शिवजी ने विष का पान किया था। समुद्रमन्थन के पश्चात् वेश बदलकर राहु नामक दैत्य ने अमृत का पान किया तो भगवान् विष्णु ने राहु का सिर सुदर्शन चक्र से अलग किया था। सगर पुत्रों ने समुद्र को खोदा था। उस समय कपिल मुनि के शाप से सभी भस्म हो गए थे। तब भगीरथ ने अपने पितरों के तर्पण के लिए स्वर्ग से गङ्गा को धरती पर लाया और गङ्गा के जल से समुद्र को भरा था। त्रेतायुग में सीता का रावण ने जब अपहरण किया था तब श्रीराम ने लङ्का जाने के लिए समुद्र को बाँधा था। पुराणों, महाभारतादि में तथा बाद के साहित्य में समुद्र से सम्बन्धित इन कथाओं का वर्णन किया गया है।

सन्दर्भ

1. रामचन्द्र वर्मा, संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, पृ0, 958; नवल, नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ0, 1411
2. वीक्ष्य रन्तुमनसः सुरनारीरात्तचित्रपरिधानविभूषाः।
   तत्प्रियार्थमिव यातुमथास्तं भानुमानुपपयोधि ललम्बे।। किरातार्जुनीय, 9.1
3. अग्रसानुषु नितान्तपिशङ्गैर्भूरुहान्मृदुकरैरवलम्ब्य।
   अस्तशैलगहनं नु विवस्वानाविवेश जलधिं नु महीं नु।। वही, 9.7
4. इति धौतपुरन्ध्रिमत्सरान्सरसि मज्जनेन।
   श्रियमाप्तवताऽतिशायिनीमपमलाङ्गभासः।
   अवलोक्य तदैव यादवानपवारिराशेः
   शिशिरेतररोचिषाप्यपां ततिषु मङ्क्तुमीषे।। शिशुपालवध, 8.71
5. पयसि सलिलराशेर्नक्तमन्तर्निमग्नः
   स्फुटमनिशमतापि ज्वालया वाडवाग्नेः।
   यदयमिदमिदानीमङ्गमुद्यन्दधाति
   ज्वलतिखदिरकाष्ठाङ्गारगौरं विवस्वान्।। वही, 11.45
6. i) स्कन्धधूननविसारिकेसरक्षिप्तसागरमहाप्लवामयम्।
   उद्धृतामिव मुहूर्तमैक्षत स्थूलनासिकवपुर्वसुन्धराम्।। वही, 14.71
   ii) बभ्रामैको बन्धुमिष्टं दिदृक्षुः सिन्धौ वाद्यो मण्डलं गोर्वराहः।। वही, 18.25
7. i) वारिधीनिव युगान्तवायवः क्षोभयन्त्यनिभृता गुरुनपि।। किरातार्जुनीय, 13.66
   ii) युगान्तवाताभिहतेव कुर्वती निनादमम्भोनिधिवीचिसंहतिः।। वही, 14.27
8. i) प्रलयोल्लसितस्य वारिधेः परिवाहो जगतः कराति किम्।। शिशुपालवध, 16.51
   ii) अभितः क्षुभिताम्बुराशिधीरध्वनिराकृष्टसमूलपादपौघः।
   जनयन्नभवद्युगान्तशङ्कामलिनो नागविपक्षपक्षजन्मा।। वही, 20.57
9. बभार शून्याकृतिरर्जुनस्तौ महेषुधी वीतमहेषुजालौ।
   युगान्तसंशुष्कजलौ विजिह्मः पूर्वापरौ लोक इवाम्बुराशी।। किरातार्जुनीय, 17.39
10. पयस्यभिद्रवति भुवं युगावधौ सरित्पतिर्न हि समुपैति रिक्तताम्।। शिशुपालवध, 17.40
11. उदन्वानिव सिन्धूनामापदामेति पात्रताम्।।

नीलनीरजनिभे हिमगौरं शैलरुद्धवपुषः सितरश्मेः।
खे रराज निपतत्करजालं वारिधेः पयसि गाङ्गमिवाम्भः।। किरातार्जुनीय, 11.21;9.19

12. आलोकयामास हरिः पतन्तीर्नदीः स्मृतीर्वेदमिवाम्बुराशिम्।
अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।
अनुरोदितीवं करुणेन पत्रिणां विरुेन वत्सलतयैष निम्नगाः।।
पाषाण स्खलनविलोलमाशु नूनं वैलक्ष्याद्ययुरवरोधनानि सिन्धोः।।
प्रथमप्रबुद्धनदराजसुतावदनेन्दुनेव तुहिनद्युतिना।।
कार्ष्णिः प्रत्यग्रहीदेकः सरस्वानिव निम्नगाः।। शिशुपालवध, 3.75;4.47;8.8;9.30;19.10

13. बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।
सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा।। वही, 2.100

14. दयासमुद्रे स तदाशयेऽतिथीचकार कारुण्यरसापगा गिरः।। नैषधचरित, 1.134

15. यथावदस्मै पुरुषोत्तमाय तां स साधुलक्ष्मीं बहुवाहिनीश्वरः। वही, 16.12 पर मल्लिनाथ की टीका (अथ ..... बहुवाहिनीश्वरः बहुनदीपतिः, स समुद्रः)

16. i) विदिद्युते ते वाडवजातवेदसः शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः।। शिशुपालवध, 1.20
ii) जनितभुवनदाहारम्भमम्भांसि दग्ध्वा
ज्वलितमिव महाब्धेरूर्ध्वमौर्वानलार्चिः।। वही, 11.43

17. पयसि सलिलराशेर्नक्तमन्तर्निमग्नः
स्फुटमनिशमतापि ज्वालया वाडवाग्नेः। शिशुपालवध, 11.45

18. भैम्या समं नागगणद्वियोगं स दूतधर्मे स्थिरधीरधीशः।
पयोधिपाने मुनिरन्तरायं दुर्वारमप्यौर्वमिवौर्वशेयः।। नैषधचरित, 6.2

19. कालेया इति विख्याता गणाः परमदारुणाः।
दुर्गं समाश्रित्य महोर्मिमन्तं रत्नाकरं वारुणमालयं स्म।।
समुद्रं ते समासाद्य वारुणं त्वम्भसांनिधिम्।
कालेयास्समपद्यन्त त्रैलोक्य विनाशनैः।।
ते रात्रौ समाभिक्रुद्धा बभुस्तांस्तदा मुनीन्।
आश्रमेषुच ये सन्ति पुण्येष्वायतनेषु च
पातुकाम समुद्रं च अगस्त्यऋषिसत्तमः।
एष लोकहितार्थाय पिवामि वरुणालयम्।। पद्म पुराण, 1.12.2,33-35,58

20. i) निपतितापि न मन्दरभूभृता त्वमुदधौ शशलाञ्छन! चूर्णितः।
अपि मुनेर्जठरार्चिषि जीर्णतां बत गतोऽसि न पीतपयोनिधिः।। नैषधचरित, 4.51
ii) भैम्यां समं नाजगणद्वियोगं स दूतधर्मे स्थिरधीरधीशः।
पयोधिपाने मुनिरन्तरायं दुर्वारमप्यौर्वमिवौर्वशेयः।। वही, 6.2
iii) सेयं न धत्तेऽनुपपत्तिमुच्चैर्मच्चित्तवृत्तिस्त्वयि चिन्त्यमाने।
ममौ स भद्रं चुलुके समुद्रस्त्वयात्तगाम्भीर्यमहत्त्वमुद्रः।। वही, 8.45

21. मन्थान मन्दरं कृत्वा तथा नेत्रं च वासुकिम्।
देवा मथितुमारब्धाः समुद्रं निधिमम्भसाम्।।
अमृतार्थे पुरा ब्रह्मंस्तथैवासुरदानवाः।
एकमन्तमुपाश्लिष्टा नागराज्ञो महासुराः।।
वबुधाः सहिताः सर्वे यतः पुच्छं ततः स्थिताः। महाभारत, 1.18.13-14

22. क्षीरसिन्धुरिव मन्दरभिन्नः काननान्यविरलोच्चतरूणि।। किरातार्जुनीय, 9.28

23. येनापविद्धसलिलः स्फुटनागसद्मा
देवासुरैरमृतमम्बुनिधिर्मन्थे।
व्यावर्तनैरहिपतेरयमाहिताङ्कः
खं व्यालिखन्निव विभाति स मन्दराद्रिः।। वही, 5.30

24. i) अमृतं नाम यत्सन्तो मन्त्रजिह्वेषु जुह्वति।
शोभैव मन्दरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधिवर्णना।। शिशुपालवध, 2.10
ii) तुरगशताकुलस्य परितः परमेकतुरङ्गजन्मनः
प्रमथितभूभृतः प्रतिपथं मथितस्य भृशं महीभृता।
परिचलतो बलानुजबलस्य पुरः सतत धृतश्रिय -
श्चिरविगतश्रियो जलनिधेश्च तदाभवदन्तरं महत्।। वही, 3.82
iii) दिव्यानामपि कृतविस्मयां पुरस्तादम्भस्तः स्फुरदरविन्दचारुहस्ताम्।
उद्वीक्ष्य श्रियमिव काञ्चिदुत्तरन्तीमस्मार्षीज्जलनिधिमन्थनस्य शौरिः।। वही, 8.64
iv) निर्जिताखिलमहार्णवौषधिस्यन्दसारममृतं ववल्गिरे।
नाकिनः कथमपि प्रतीक्षितुं हूयमानमनले विषेहिरे।। वही, 14.29 पर मल्लिनाथ की टीका (नाकः ..... महार्णवौषधीनां महार्णवमन्थनसमये उत्थितानां दिव्यौषधिलतानां स्यन्दो
मन्थनान्निःसृतो रसः तस्य सारो मृष्टांशः ..... षत्वम्।

25. आरोहणाय तव सज्ज इवास्ति तत्र सोपानशोभिवपुरश्मबलिच्छटाभिः।
भोगीन्द्रवेष्टशतघृष्टिकृताभिरब्धि-क्षुब्धाचलः कनककेतकगोत्रगात्रि!।। नैषधचरित, 11.61

26. ततः शितांशुरभवद्देवानां प्रीतिदायकः।
ययाचेशंकरोदेवोजटाभूषणकृन्मम।। पद्मपुराण, 1.3.52

27. ऐतेन ते स्तनयुगेन सुरेभकुम्भौ पाणिद्वयेन दिविषद्द्रुमपल्लवानि।
आस्येन स स्मरतु नीरधिमन्थनोत्थं स्वच्छन्दमिन्दुमपि सुन्दरि! मन्दराद्रिः।।
निजानुजेनातिथितामुपेतः प्राचीपतेर्वाहनवारणेन।
सिन्दूरसान्द्रे किमकारि मूर्ध्नि तेनारुणश्रीरयमुज्जिहीते?।। नैषधचरित, 11.63;22.44

28. मध्ये च तस्य सार्धचन्द्रेण .....। हर्षचरित, प्रथम उच्छवास, पृ0, 36-37

29. यावन्तमिन्दुं प्रतिपत्प्रसूते प्रासावि तावानयमब्धिनापि।
तत्कालमीशेन घृतस्य मूर्द्ध्नि विघोरणीयस्त्वमिहास्ति लिङ्गम्।। नैषधचरित, 22.83

30. निपततापि न मन्दरभूभृता त्वमुदधौ शशलाञ्छन् ! चूर्णितः।
अपि मुनेर्जठरार्चिषि जीर्णतां बत गतोऽसि न पीतपयोनिधिः।। वही, 4.51

31. i) उदर एव धृतः किमुदन्वता न विषयो वडवानलवद्विबुधुः।
विषवदुज्झितमप्यमुना न स स्मरहरः किममुं बुभुजे विभुः।। वही, 4.60
ii) असितमेकसुराशितमप्यभून्न पुनरेष पुनर्विशदं विषम्।
अपि निपीय सुरैर्जनितक्षयं स्वयमुदेति पुनर्नवमार्णवम्।। वही, 4.61

32. i) तुरगशताकुलस्य परितः परमेकतुरङ्गजन्मनः
प्रमथितभूभृतः प्रतिपथं मथितस्य भृशं महीभृता।
परिचलतो बलानुजबलस्य पुरः सतत धृतश्रिय -
श्चिरविगतश्रियो जलनिधेश्च तदाभवदन्तरं महत्।। शिशुपालवध, 3.82
ii) रेजे .....।
..... रीक्ष्यमाणः।
श्रीसन्निधानरमणीयतरोऽश्व उच्चै -
रुच्चैःश्रवा जलनिधेरिव जातमात्रः।। वही, 5.57

33. महेन्द्रमुच्चैःश्रवसा प्रतार्य्य यन्निजेन पत्याऽकृत सिन्धुरन्वितम्।
स तद्ददेऽस्मै हयरत्नमर्पितं पुरानुबद्धुं वरुणेन बन्धुताम्।। नैषधचरित, 16.25

34. ततः स्फुरत्कान्तिमती विकासिकमले स्थिता।
श्रीर्देवी पयसस्तस्माद्भूता धृतपङ्कजा।। विष्णु पुराण, 1.9.100

35. परिचलतो बलानुजबलस्य पुरः सतत धृतश्रिय -
श्चिरविगतश्रियो जलनिधेश्च तदाभवदन्तरं महत्।। शिशुपालवध, 3.82

36. दिव्यानामपि कृतविस्मयां पुरस्तादम्भस्तः स्फुरदरविन्दचारुहस्ताम्।
उद्वीक्ष्य श्रियमिव काञ्चिदुत्तरन्तीमस्मार्षीज्जलनिधिमन्थनस्य शौरिः।। वही, 8.64

37. नैनं त्यज क्षीरधिमन्थनाद्यैरस्यानुजायोद्गमितामरैः श्रीः।
अस्मै विमथ्येक्षुरसोदमन्यां श्राम्यन्तु नोत्थापयितुं श्रियं ते।। नैषधचरित, 6.80

38. ततः पिबत्सु तत्कालं देवेष्वमृतमीप्सितम्।

राहुर्विबुधरूपेण दानवः प्रापिबत् तदा।।
तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा।
आख्यातं चन्द्रसूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया।।
तो भगवता तस्य शिरश्छिन्नमलंकृतम्।
चक्रायुधेन चक्रेण पिबतोऽमृतमोजसा।। महाभारत, 1.19.4-6

39. स्वरिपुतीक्ष्णसुदर्शनविभ्रमात्किमु विधुं ग्रसते न विधुन्तुदः।
निपतितं वदने कथमन्यथा बलिकरम्भनिभं निजमुज्जति।। नैषधचरित, 4.64
40. न न्यूना नातिरिक्ताश्च वर्द्धन्त्यापो ह्रसन्ति च।
उदयास्तमयेष्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः।। विष्णु पुराण, 2.4.91
41. उपजीवति स्म सततं दधतः परिमुग्धतां वणिगिवोडुपतेः।
घनवीथिमवतीवर्णवतो निधिरम्भसामुपचयाय कलाः।।
पीत्वा जलानां निधिनाऽतिगार्ध्याद् वृद्धिं गतेऽप्यात्मनि नैव मान्तीः।
क्षिप्ता इवेन्द्रोः स रुचोऽधिवेलं मुक्तावलीराकलयाञ्चकार।। शिशुपालवध, 9.32;3.73
42. रथाङ्गभर्त्रेऽभिनवं वराय यस्याः पितेव प्रतिपादितायाः।
प्रेम्णोपकण्ठं मुहुरङ्कभाजो रत्नावलीरम्बुधिरावबन्ध।।
..... भ्रमागतैरम्बुभिरम्बुराशिः।
लोलैरलोलद्युतिभाञ्जि मुष्णन् रत्नानि रत्नाकरतामवाप।। वही, 3.36,38
43. i) आवर्तिनः शुभफलप्रदशुक्तियुक्ताः संपन्नदेवमणयो भृतरन्ध्रभागाः।
अश्वाः प्यधुर्वसुमतीमतिरोचमानास्तूर्णं पयोधय इवोर्मिभिरापतन्तः।। वही, 5.4
ii) वारिधेरिव कराग्रेवीचिभिर्दिङ्मतङ्गजमुखान्यभिघ्नतः।
यस्य चारुनखशुक्तयः स्फुरन्मौक्तिकप्रकरगर्भतां दधुः।। वही, 14.73
44. पिधाय विदधे बहुरत्नक्षीरनीरनिधिमग्नमिवैषः।। नैषधचरित, 21.45
45. यदगारघटाट्टकुट्टिटमस्रवदिन्दूपलतुन्दिलापया।
मुमुचे न पतिव्रतौचिती प्रतिचन्द्रोदयमभ्रगङ्गया।। वही, 2.89
46. इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिका या यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति।। वही, 5.116
47. तस्य चोरयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्वदक्षिणे।
वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः।।
स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः।
आसेदुस्ते ततस्तत्र खन्यमाने महार्णवे।।
तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम्।
विष्णुं कपिलरूपेण स्वपन्तं पुरुषोत्तमम्।।
तस्य चक्षुः समुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यतः।
दग्धास्ते वै महाराज चत्वारस्त्ववशेषिताः।।
बहुकेतु सुकेतुश्च तथा धर्मरथो नृपः।
शूरः पञ्चजनो नाम तस्य वंशकरो नृपः।। हरिवंश पुराण, 1.17.19-23
48. भगीरथस्य तपसा तुष्टो ब्रह्मा ददौ मुने
गङ्गा भगीरथायाथ चिंतयामास धारणे।।
ततश्च शिवमाराध्य तद्द्वारा स्वर्णदीं भुवम्।
आनीय तज्जलैः स्पृष्ट्वा पूतान्निन्ये दिवं पितॄन्।। नारद पुराण, 1.8.135-136
49. अखानि सिन्धुः समपूरि गङ्गया कुले किलास्य प्रसभं स भंत्स्यते।
विलङ्घयते चास्य यशःशतैरहो! सतां महत्सम्मुखधावि पौरुषम्।।
नैषधचरित, 12.8 पर मल्लिनाथ की टीका (अस्य ऋतुपर्णस्य, कुले वंशे, जातैः सगरसुतैरिति शेषः सिन्धुः उदधिः, अखानि खातः ..... इन्द्रहृतयज्ञीयाश्वान्वेषणार्थं पातालपर्यन्तं खनित्वा उत्पादित इत्यर्थः, तथा स सिन्धुः, गङ्गया भागीरथ्या, समपूरि पूरितः, अस्त कुले जातेन भगीरथेनेति भावः, पातालस्थकपिलमुनिशापदग्धानां तेषां सगरसुतानामुद्धारार्थं तदवंशोद्भूतेन भगीरथेनानीतया गङ्गया स सागरः पूर्णः कृत इति निष्कर्षः। तथा स सिन्धुः, प्रसभं बलात्कारेण भंत्स्यते एतत्कुल्येनैव रामेण बद्धः करिष्यते ..... कृतयुगापेक्षया त्रेताया ... ... भावः।)
50. i) स्मरत्यदो दाशरथिर्भवन्भवानमं वनान्ताद्वनितापहारिणाम्।
पयोधिमाबद्धचलज्जलाविलं विलङ्घय लङ्कां निकषा हनिष्यति।। शिशुपालवध, 1.68
ii) अथ लक्ष्मणानुगतकान्तवपुर्जलधि विलङ्घय शशिदाशरथिः।
परिवारितः परित ऋक्षगणैस्तिमिरौघराक्षस कुलं बिभिदे।। वही, 9.31
51. द्विरदानिव दिग्विभावितांश्चतुरस्तोयनिधीनिवायतः। किरातार्जुनीय, 2.23
52. चतुरम्बुधिगर्भधीरकुक्षेर्वपुषः सन्धिषु लीनसर्वसिन्धोः। शिशुपालवध, 20.66
53. विप्रे धयत्युदधिमेकतमं त्रसत्सु यस्तेषु पञ्चसु बिभाय न शीतसिन्धुः।
तस्मिन् अनेन च निजालिजनेन च त्वं सार्द्धं विधेहि मधुरा मधुपानकेलीः।। नैषधचरित, 11.68 पर मल्लिनाथ की टीका (विप्रे .... तेषु पञ्चसु दक्षिमण्डादिसमुद्रेषु ..... न बिभाय स्वयं न भीतः, 'ब्राह्मणो न सुरां पिबेत्' इति निषेधादिति भावः, तस्मिन् सुराब्धौ .... कुरु।।)
54. क्षीरसिन्धुरिव ..... अविरलोच्चतरूणि।। किरातार्जुनीय, 9.28
55. आसेदिरे लावणसैन्धवीनां चमूचरैः कच्छभुवां प्रदेशाः।। शिशुपालवध, 3.80 पर मल्लिनाथ की टीका (चमूषु ..... लवणसिन्धोरिमा लावणसैन्धव्यः ..... स्पष्टा।)
56. पुनरप्यवापदिव दुग्धवारिधिक्षणगर्भवासमनिदाघदीधितिः।। वही, 13.51 पर मल्लिनाथ की टीका (अधिरात्रि ..... दुग्धवारिधौ क्षीराब्धौ .... व्यज्यते।।)
57. i) ..... सुधाम्बुधौ दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ।
नैषधचरित, 1.8 पर मल्लिनाथ की टीका (अथास्य ..... सुधाम्बुधौ क्षीरनिधौ ..... अर्थः।)
ii) नैनं त्यज क्षीरधिमन्थनाद्यैरस्यानुजायोद्गमितामरैः श्रीः। वही, 6.80
iii) सहामुना तत्र पयःपयोनिधौ कृशोदरि! क्रीड यथामनोरथम्।। वही, 9.59 पर मल्लिनाथ की टीका (असेवीति ..... तत्र पयः पयोनिधौ क्षीराब्धौ ..... भावः।।)
iv) क्षीरार्णवस्तव कटाक्षरुचिच्छटानामध्येतु तत्र विकटायितमायताक्षि!।। वही, 11.40
v) तं पिधाय विदधे बहुरत्नक्षीरनीरनिधिमग्नमिवैषः।। वही, 21.45
vi) क्षीरोदपूरोदरवासहानवैस्यमेतस्य निरस्यतीयम्।। वही, 22.68
58. स्वादूदके जलनिधौ सवनेन सार्द्ध भव्या भवन्तु तव वारिविहारलीलाः।
द्वीपस्य तं पतिममुं भज पुष्कररस्य निस्तन्द्रपुष्करतिरस्करणक्षमाक्षि।। वही, 11.27
59. द्वीपस्य पश्य दयितं द्युतिमन्तमेतं क्रौञ्चस्य चञ्चलदृकगञ्चलविभ्रमेण।
यन्मण्डले स किल पाण्डुलसन्निवेशः पूरश्चकास्ति दधिमण्डमयः पयोधेः।। वही, 11.49
60. ईशः कुशेशयसनाभिशये! कुशेन द्वीपस्य लाञ्छिततनोर्यदि वाञ्छितस्ते।
ज्योतिष्मता सममनेन वनीघनासु तत् त्वं विनोदय घृतोदतटीषु चेतः।। वही, 11.58
61. द्वीपस्य शाल्मल इति प्रथितस्य नाथः
पाथोधिना वलयितस्य सुराम्बुनाऽयम्।
अस्मिन् वपुष्मति न विस्मयसे गुणाब्धौ
रक्ता तिलप्रसवनासिकि! नासि किं वा?।। वही, 11.67
62. द्वीपं द्विपाधिपतिमन्मपदे! प्रशास्ति प्लक्षोपलक्षितमयं क्षितिपस्तदस्य।
पीत्वा तवाधरसुधां वसुधासुधांशुर्न श्रद्दधातु रसमिक्षुरसोदवाराम्। वही, 11.73,75